International Journal of Education and Science Research Review
ISSN 2348-6457
www.ijesrr.org August- 2018, Volume-5, Issue-4 Email- editor@ijesrr.org

कालिदास के साहित्य में निहित शैक्षिक तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन

डॉ0 बृजभूषण मिश्र
वैशाली इन्स्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन एण्ड टेक्नालॉजी
शाहपुर तिवारी, लालगंज, वैशाली (बिहार)

प्रस्तावना

प्राचीनकाल में संस्कृत साहित्य के अनेक कवि एवं साहित्यकार विख्यात हैं। भास, अश्वघाष, कालिदास, हर्ष, बाणभट्ट आदि विद्वानों ने संस्कृत वांगमय का निरन्तर परिमार्जन किया है किन्तु यथार्थ चित्रण व कौशलस्वरूप कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ, अद्वितीय कवि एवं नाटककार स्वीकार किये जाते हैं। चाहे वह सौन्दर्यशालिनी नाट्यकला हो, चाहे सरस और मधुर मनाह्लदयग्राही गीतकाव्य के उद्‌गार रहे हों, चाहे मानव अन्तःस्थल की भावाभिव्यक्ति रही हो, या मानव व प्रकृति के अन्तःस्थल की सूक्ष्म भावनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित करने की बात रही हो, चाहे वह शैली, श्रृंगारकला, पदालालित्य व परिष्कार, अभिव्यन्जना, अलंकार या उपअलंकार की सहज, सरस, साज–सज्जा, सबमें उनकी कृति अनुपम एवं अद्वितीय रही है। उनके द्वारा निर्मित रघुवंश, कुमारसम्भव नाम के दो महाकाव्य, मेघदूत नामक खण्डकाव्य तथा मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् एवं अभिज्ञान शाकुन्तलम् नामक तीन नाटक लोकप्रसिद्ध हैं। इन रचनाओं में उन्होंने उच्च विचार, उच्चादर्श के प्रति अभ्यर्थना का भाव व्यक्त किया है। कालिदास का काव्य विविध मिश्रित रंगों एवं ध्वनियों का समन्वित संसार है, जिसमें उनके युग की सम्पूर्ण प्रवृत्तियों का यथावत् संकलन प्राप्त होता है।

प्रसिद्ध विद्वान् एवं टीकाकार मल्लिनाथ के प्रस्तावित श्लोकों में बड़ी सुन्दरता के साथ इस उक्ति की पुष्टि की गयी है। उनके अनुसार कालिदास अनेक शास्त्रों के विद्वान थे, जैसा कि मल्लिनाथ के इस श्लोक से स्पष्ट हो जाता है –

''वाणी काणभुजीमजीगणदावाशासीच्च वैयासिकीय।
अन्तस्तन्त्रमरस्तपन्नगगवी गुम्फेषु चा जागरीत।।
वाचामाकलयद्रहस्यमखिलं यश्चाक्षपादस्फुराम।
लोके भुवदुपज्ञयेव विदुषां सौजन्य जन्यं यशः।।
मल्लिनाथः कवि सोऽयं मन्दात्मानु जिक्षया।
व्याचष्टे कालिदासीयं काव्यत्रयं मनाकुलम्।।''

अर्थात् कालिदास ने कणादमुनि के वैशेषिक दर्शन, व्यास जी के वेदान्त, पतंजलि के व्याकरण महाभाष्य और अक्षपाद के न्याय आदि शास्त्रों का अध्ययन किया था। इसके अतिरिक्त वे महामूर्धन्य नाटककार एवं कवि थे और साहित्यशास्त्र के उत्कृष्ट विद्वान थे।

कालिदास की रचनाओं में जीवन के लिये सुनिश्चित योजना की कल्पना है, जिससे मनुष्य व प्रकृति के लिये जो चौड़ी खाई विकास यात्रा के साथ–साथ उत्पन्न हो गयी, उसके पाये जाने की आवश्यकता व स्पृहणीयता की ओर कालिदास ने मानव का ध्यान आकर्षित किया। यद्यपि कालिदास ने प्रकृति की गहराइयों या उसके रहस्यों के आवर्तों को निरावृत्त करने का प्रयास अपने नाटकों एवं काव्यों में विशेष रूप से नहीं किया है, पर प्रकृति के सामान्य व्यवहार को मानव के जीवनक्रम में होने वाली अनेक घटनाओं तथा मनःस्थिति से जोड़ने का प्रयास किया है और उनकी रचनाओं का सभी पक्षों, चाहे वह काव्य हो या नाट्यकला, उस पर प्रकृति का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है। मानव ह्रदय के अनुरूप सुकुमारतमभाव तथा द्वन्द्व को उन्होंने कोमलतापूर्वक अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है।

इस तरह कालिदास किसी राष्ट्र के कवि नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व व सम्पूर्ण मानवता के कवि हैं।
महानकवि, नाटककार एवं विचारक गेटे ने उनकी रचना शकुन्तलम् पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि – ''यौवनरूप वासन्ती कुसम सौरभ और प्रौढ़त्वरूप ग्रीष्म के मधुर फलों को अथवा अमृतत्व मानस को सन्तृप्त व विमुक्त करने वाली किसी अन्य वस्तु को देखना चाहते हों, अथवा भाविक ऐश्वर्य एवं सुषमा का अपूर्व सम्मिलन यदि एक स्थान पर देखना चाहते हों तो अभिज्ञान शकुन्तलम् का रसास्वादन कीजिये।''
दूसरे विद्वान ने कहा है –

''काव्येषु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽअंक, तत्र श्लोक चतुष्टयम्।।

विश्वकवि टैगोर ने गेटे के भावों को निम्न प्रकार से व्यक्त किया है – ''स्वर्ग और मर्त्य का जो यह मिलन है, उसे कालिदास ने सहज ही सम्पादित कर लिया है। उन्होंने फूल को सहज भाव से फल में परिणत कर लिया है, मर्त्य की सीमा को इस प्रकार स्वर्ग से मिला दिया है कि बीच का व्यवहार किसी को दृष्टिगोचर ही नहीं होता।

कालिदास की रचनाएँ मानव हृदय की विभिन्न परिस्थितियों में उदीयमान वित्तवृत्तियों के चित्रण तथा लोक व्यवहार के साथ सामंजस्य स्थापित करती हैं। यद्यपि धर्म आचार की गहराइयों या उसके सूक्ष्म अध्ययन से अपने काव्य को उन्होंने कभी नहीं जोड़ा, तथापि जीवन के विभिन्न पहलुओं को धर्म के शाश्वत आदर्श और लोकनीति से अवश्य ही जोड़ने का प्रयास किया है।

प्रसिद्ध कवि एवं रूसी लेखक एन0एम0 करैमनीज ने इनके नाटक की वैशिष्टता पर प्रकाश डालते हुए बड़ा सटीक शब्द उद्धृत किया है– ''शकुन्तल नाटक के प्रत्येक पृष्ठ में हमें उच्चस्तरीय काव्यात्मक सौष्ठव, सुकुमातम भावनायें, वसन्त ऋतु की शान्तिमय विभावरी जैसी कोमल उत्कृष्ट अवर्णनीय माधुर्य, पवित्रतम व अद्वितीय चित्रण व श्रेष्ठ कोटि की कला का दर्शन होता है।''

इस तरह कालिदास की रचनाएं आज भी आकाश में स्थायी अटल ध्रुवतारे की तरह साहित्य में भ्रमित अनेक रचनाकारों के दिशाभ्रम का निवारण करती रहेगी। महाकवि कालिदास केवल अपने काव्यों में ही नहीं नाट्य रचना में भी वे अद्वितीय हैं। नाटक भी उनकी कृतियों में समाहित है, अतः उनका भी वर्णन समीचीन होगा।

नाटक से तात्पर्य, अर्थ, उत्तपत्ति, विकास, महत्त्व एवं उपयोगिता –
सम्पूर्ण जगत के लिये उपदेश करने वाला, धैर्य, क्रीड़ा एवं सुख का साधन, दुःखार्त्त, श्रमार्त्त, शोकार्त्त और तपस्वियों को विश्रान्ति देने वाला काव्य ही नाटक है।

नाटक से तात्पर्य –
सामाजिकों की सुख–दुःखमयी भावना को अंगादि अभिनयों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से व्यक्त करके, सामाजिकों को साधारणतया अपनी रसमयी भावना से आनन्दरस की अनुभूति करा देना ही नाटक है। रस स्वभाव वस्तु का नाम ही नाटक है।

''हितोपदेश जननं धृति क्रीडा सुखादिकृत
दुखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनां
विश्रान्ति जननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति।''
''यानि नामानि गौणानि विश्चातानि महात्मभिः''

किसी वस्तु के नाम की संज्ञा दो प्रकार से दी जाती है, एक तो स्वेच्छा से, दसरी गुणों के आधार पर। एक वस्तु के हजार नाम गुणों के आधार पर ही दिया जाता है। गुणों के कारण ही महात्माओं द्वारा अनेक नाम भगवान के कहे गये हैं। इस प्रकार गुणों के आधार पर नटों या भरतों द्वारा किया गया कर्म ही नाट्य है। नटों या भरतों द्वारा किये गये अभिनय के द्वारा सामाजिकों को जो आनन्दानुभूति होती है, उस नाटक का अर्थ आनन्दरस है।

नाटक की उत्पत्ति –
अभिनवगुप्त नाटक शब्द की व्युत्पत्ति नर्तनार्थक 'नट' धातु से मानते हैं। इस प्रकार 'नट्' धातु से 'णिच्' एवं 'ण्वुल' के योग से 'नाटकम्' बना। इसकी उत्पत्ति नपुंसक लिंग से मानी जाती है। जिसका अर्थ है – ''दृश्यकाव्य का एक भेद विशेष। यदि नाटक शब्द को दूसरे लिंग में रख दिया जाय तो वह दूसरे अर्थ का बोधक हो जाता है।''

''तुतीनामेव नाटकन्नाम तच्चेष्टितं प्रहलीदायकं भवति।'' इससे यह स्पष्ट होता है कि आचार्य अभिनवगुप्त नमनार्थक णट् (णत नतौ) धातु से भी 'नाटक' शब्द की व्युत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

नाटक का प्रादुर्भाव त्रेता युग के प्रारम्भ में हुआ जब प्रपन्च के लोग पारस्परिक ईर्ष्या द्वेषादि सुख–दुःखमय की अवस्था में थे तभी मनोरंजन के लिए पितामह ब्रह्मा से कहा कि हम लोगों के लिये ऐसा खेल बना दीजिये, जो दृश्य अर्थात् हृदयग्राही हो श्रव्य अर्थात् व्युत्पत्ति प्रद हो। इसमें शूद्र जातियों के व्यवहार का विषय न हो एवं न तो वे पढ़ एवं सुन सकें। ऐसा कोई पाँचवा वेद बना दीजिये।

ब्रह्मा ने चारों वेदों से – सामवेद से बायन, यजुर्वेद से यज्ञिय क्रिया कलाप, अथर्ववेद से रस और जितने भी कर्म हैं सब कामना के प्रतीक हैं। ऋग्वेद से पाठ्यसामग्री लेकर पंचवेद की रचना की।

कविकुल गुरु कालिदास भी भरत को ही इ सका प्रधान आचार्य मानते हुए लिखते हैं – ''मुनिना भरतेन यः प्रयोगो, भवतीष्वष्ट रसाश्रयो नियुक्तः।''

उत्तररामचरित के सातवें अंक में भवभूति ने लिखा है7 ''भगवतावाल्मीकिना स्वकृतिमप्सरोभिः प्रयुज्यमानां द्रष्टुमुपनिमन्त्रिता वयम्।''

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नाट्यकला प्रयोगरूप में आ चुकी थी और उसके प्रवर्तक कुश और लव हैं। कुश एवं लव की तरह जो इस विद्या में निपुण होता है वह कुशीलव कहलाता है।

उपरोक्त विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि सर्वप्रथम नाटक एवं काव्य की उत्पत्ति देवजगत से हुई। उसके बाद मानव जगत में काव्य एवं नाटक का अवतरण हुआ। मानव जगत में आने की तीन आख्यायिकायें हैं। प्रथम भरत के द्वारा, दूसरी शारदातनय ने अपने ग्रन्थ भावप्रकाशन में बताया है, तीसरा अभिनय दर्पण में नन्दिकेश्वर द्वारा।

नाटक का महत्त्व –

नाटक एक ऐसा सार्वजनिक मनोरंजन का साधन है जिसकी रचना सर्वजन हिताय तथा सर्वजन सुखाय होती है। क्योंकि ब्रह्मा ने इसकी सृष्टि देवताओं के समाज हित चिन्तन की इच्छा को ध्यान में रखकर की है। इसके द्वारा सभी वर्णों का मनोरंजन तथा हित होता है।

क्रीडनीयकमिच्छामि दृश्यं, श्रवयं च यद भवेत्।
न वेद व्यवहारोऽयं संश्राव्य शूद्र जातिषु।।
तस्मात्सृजापरं वेदं पन्चमं सार्ववर्णिकाम्।।

नाटक का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन तथा सत्य का आवरण करना है। सत्य का आवरण भी बहुत प्रकार से होता है। नैतिक, धार्मिक, उपदेशात्मक सुधारपरक, सामाजिक आदर्श, मनोवैज्ञानिक नाम का उद्घाटन, उच्च मानवीय मूल्यों का उद्घाटन, व्यक्तिगत सामाजिक और जीवन आडम्बरों के प्रति व्यंग्यपरक आघात के साथ आश्चर्यपूर्ण वैज्ञानिक सम्भावना के साथ ही बोधपरक रहस्यों का उद्घाटन है।

नाटक की सबसे बड़ी विशेषता सहृदय के हृदय में रसानुभूति जगाना है। काव्य का चरम लक्ष्य है तथा ब्रह्मानन्द सहोदर की पदवी को प्राप्त करते हुए रस की अनुभूति ही सहृदय का अभिप्रेत है। इसीलिये मम्मटादि आचार्यों ने रसास्वाद को काव्य का सकल एवं मूलभूत प्रयोजन कहकर उसका गुणगान किया है।

नाटक (दृश्यकाव्य) में रंगमंच पर पुरोदृश्यमान पात्रों की वेशभूषा, उनके आकार, उनकी भावभंगिमा तथ कथोपकथन आदि से एक सजीव मनोहर तथा हृदयग्राही बिम्ब खड़ा हो जाता है, जिससे सहृदय जन की रसानुभूति का मार्ग सुगम हो जाता है। नाटक की यह रसाश्रयता ही उसे ''नाटकम् कवित्वम्'' तथा ''काव्येषु नाटकं रम्यम्'' इत्यादि सूक्तियों से मण्डित करती है। आचार्य वामन ने निःसंकोच भाव से घोषित किया है कि काव्य के अन्य प्रकार कथा, आख्यायिका तथा महाकाव्य आदि दशरूपक के ही विलास है।

उपर्युक्त विवेचन एवं विवरणों से स्पष्ट हो जाता है कि नाटक आह्लादकर तथा मनोरम है। अतः नाटक के विषय में यह उक्त सर्वांशतः सत्य एवं समीचीन है – ''काव्येषु नाटकं रम्यम्।''

शोध का उद्देश्य –

ऐतिहासिक उद्देश्य का मूल उद्देश्य भूत के आधार पर वर्तमान को समझना तथा भविष्य के प्रति सतर्क रहना होता है। अतः किसी समस्या, घटना अथवा व्यवहार से समुचित मूल्यांकन के लिये उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित होना आवश्यक है। अनुशासन सम्बन्धी वर्तमान धारणा शिक्षक के स्थान पर छात्रों को महत्त्व, छात्र परिषदों का गठन एवं उन पर नियन्त्रण, व्यक्ति की वर्तमान अवधारणा मापन और मूल्यांकन आदि विकसित हुये हैं और आज वर्तमान रूप में हैं। इसका मूल उद्देश्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में इन समस्याओं का मूल्यांकन करना है।

यह अनुसन्धान सम्बन्धी विषयों में मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक विज्ञानों में चिन्तन को नयी दिशा देकर नीति निर्धारण में सहायता देता है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि आज नवीन कही जाने वाली वस्तुओं में नवीनता कहाँ तक है तथा मध्यकालीन परिवर्तनों का इन पर क्या प्रभाव पड़ा है। इस प्रकार यह अनुसन्धान त्रुटियों के प्रति सतर्क कर मार्ग प्रशस्त करता है।

यह वैज्ञानिकों की भूतकालीन तथ्यों के प्रति जिज्ञासा की पूर्ति करके भूत, भविष्य एवं वर्तमान का सम्बन्ध स्थापित कराता है। क्षेत्र विशेष जैसे व्यावसायिक कार्यकर्ताओं के लिये पूर्वानुभव के आधार पर भावी कार्यक्रम की रूपरेखा निर्धारित करने में सहायता करता ह।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि किन परिस्थितियों में, किन कारणों से व्यक्ति अथवा व्यक्तियों ने एक विशेष प्रकार का व्यवहार किया है। उससे उस व्यक्ति एवं समाज पर क्या प्रभाव पड़ा।

प्रस्तुत शोध के इन तत्त्वों को दृष्टि में रखते हुए विचार करने पर निम्नलिखित उद्देश्य उपस्थापित किये जा सकते हैं –

१. कालिदास की रचनाओं में पाये जाने वाले शिक्षा तत्त्वों का संकलन।
२. कालिदास के साहित्य में निहित शैक्षित तत्त्वों की व्याख्या।
३. तत्कालीन परिवेश में तत्त्वों का शैक्षिक मूल्यांकन।
४. कालिदास के साहित्य में प्राप्त होने वाले शिक्षा के तत्त्वों का तत्कालीन शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का विवेचन।
५. आधुनिक परिवेश में कालिदास की रचनाओं में उद्धृत शैक्षिक तत्त्वों का मूल्यांकन।
६. आधुनिक शिक्षा के लिए कालिदास के साहित्य में प्राप्त होने वाले तत्त्वों की उपादेयता का समीक्षात्मक विवेचन।

उपर्युक्त उद्देश्या को दृष्टिगत रखकर इस शोधकार्य को मूर्तरूप प्रदान करने का किंचित प्रयास शेधकर्त्ता द्वारा अपने शोध–प्रबन्ध के अन्तर्गत किया गया है।

शोध की आवश्यकता –

उक्त उद्देश्य शोध की आवश्यकता स्वतः स्पष्ट कर देता है। किसी भी चीज की आवश्यकता उसके अन्वेषण के लिए आधार प्रस्तुत करती है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध की भी कुछ आवश्यकतायें हैं, जो इस प्रकार के शोध के लिये शोधकर्त्ता को निरन्तर प्रेरित करती रही है, जिसकी आपूर्ति का प्रयत्न वह अपने शोध के माध्यम से कर रहा है।

कालिदास भारतवर्ष के ही नहीं अपितु विश्व के एक श्रेष्ठ रचनाकार के रूप में गिने जाते हैं, जिनकी रचनाओं का मूल्यांकन और विवेचन साहित्यिक तत्त्वों के आधार पर कई प्रकार से किया गया है। कतिपय समालोचनात्मक ग्रन्थ कालिदास की रचनाओं पर लिखे गये हैं, किन्तु अभी तक इस महान रचनाकार की रचनाओं को लेकर शैक्षिक तत्त्वों के आधार पर किसी भी शोधस्तर का शोध–प्रबन्ध नहीं लिखा गया है। आधुनिक शिक्षा के जटिल परिवेश में इस बात की भी आवश्यकता प्रतीत होती है कि इस महान रचनाकार के साहित्यिक कथानकों और पात्रों के माध्यम से उसमें निहित शैक्षिक तत्त्वों का विवेचनात्मक पहलू प्रस्तुत किया जाये और यह भी स्पष्ट किया जाय कि आधुनिक शिक्षा के लिये इन शैक्षिक तत्त्वों की किस प्रकार किस रूप में और कितनी आवश्यकता है। यही आवश्यकतायें किसी न किसी रूप में प्रस्तुत शोध के लिये उपयोगितायें बन जाती हैं –

१. कालिदास के साहित्य में शैक्षिक तत्त्वों क एकत्रीकरण, संकलन तथा संग्रहन की आवश्यकता।
२. कालिदास के साहित्य में प्राप्त होने वाले शिक्षा के तत्त्वों की व्याख्या की आवश्यकता।
३. कालिदास के समसामयिक शैक्षिक वातावरण को दृष्टि में रखते हुए प्राप्त होने वाल शैक्षिक तत्त्वों के मूल्यांकन की आवश्यकता।
४. तत्कालीन भारतीय शिक्षा प्रणाली कालिदास की रचनाओं के शैक्षिक प्रभाव के विवेचन की आवश्यकता।
५. आधुनिक शैक्षिक पर्यावरण के अन्तर्गत कालिदास के साहित्य में प्राप्त होने वाल शैक्षिक तत्त्वों के मूल्यांकन की आवश्यकता।
६. आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में कालिदास के साहित्य में निहित शैक्षिक तत्त्वों की उपादेयता प्रकट करने की आवश्यकता।

उपर्युक्त आवश्यकताओं को ही शोधकर्त्ता अपने शैक्षिक शोध के कार्य का आधार मानता है, जिसे प्राप्त करने के लिये उसने प्रयास करना प्रारम्भ किया है। कालिदास के द्वारा रचित नाटकों, समालोचनात्मक ग्रन्थों, कालिदास की अन्य रचनाओं तथा समसामयिक अन्य ग्रन्थों से भी आवश्यकतानुसार उपयोगी तथ्यों का संकलन किया गया है। जिसके माध्यम से कालिदास के साहित्य में निहित शैक्षिक तत्वों का एक वैज्ञानिक एवं विश्वसनीय विवेचन प्रस्तुत किया जा सके।

शोध की समस्या –

किसी भी अनुसंधान कार्य में समस्या उसका महत्वपूर्ण अंग होती है। क्योंकि समस्या की शोध में उतना ही महत्ता है, जितना कि मानव शरीर में दो आँखों का। समस्या ही शोधकर्त्ता को शोधकार्य के लिये जिज्ञासु बनाती है। शोधकर्त्ता इन्हीं की पूर्ति के लिये साधनों को अपनाता है और समाधान के लिये एक प्रश्न उपस्थित होता है।

किसी प्रश्न का जब सही उत्तर प्राप्ति नहीं होती है तो शोध विषय के लिये एक समस्या उपस्थित हो जाती है। अनुसंधाता अपनी अत्यन्त परिशोधित प्रयोगात्मक विधियों के माध्यम से इसका प्रामाणिक समाधान उपस्थित करता है। अतः स्पष्ट है कि आवश्यकता की सन्तुष्टि के मार्ग में उपसंचित बाधा ही समस्या है। टाउनसेण्ड ने समस्या की परिभाषा देते हुये कहा है कि – ''समस्या तो समाधान के लिये प्रस्तावित एक प्रश्न है।''

शोध की परिकल्पना –

परिकल्पना का शाब्दिक अर्थ पूर्वचिन्तन है। अनुसंधान की प्रक्रिया का यह दूसरा महत्वपूर्ण स्तम्भ है। इसका तात्पर्य यह है कि किसी समस्या का विश्लेषण और पारिभाषीकरण के पश्चात् उसमें कारणों तथा कार्यकाल के सम्बन्ध में पूर्व चिन्तन कर लिया गया है। अर्थात् इस समस्या का यह कारण हो सकता है कि इस निश्चय के बाद उसका परीक्षण शुरू हा जाता है। अनुसंधान कार्य इस परिकल्पना के निर्माण और उसके परीक्षण के बीच की प्रक्रिया है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि परिकल्पना एक अस्थायी हल या समाधान है। जो सत्य की खोज के लिये आधार का कार्य करता है। इन्हीं मान्यताओं के आधार पर प्रस्तुत शोध की परिकल्पना निर्मित की गयी है जो शोधकर्ता का सत्यान्वेषण में मार्ग दर्शन करती है। ये निम्नवत् है –

१. कालिदास के साहित्यों में शिक्षा मन्दिर का स्वरूप सुव्यवस्थित एवं गठित था।
२. गुरु एवं शिष्य का स्वरूप अति विनम्र एवं आदर्शन था।
३. कालिदास की रचनाओं में शिक्षा के उद्देश्य सर्वांगीण विकास के साथ–साथ स्वावलम्बी बनाना था।
४. कालिदास की रचनाओं में निहित शिक्षा तत्कालीन राष्ट्र, समाज, धर्म एवं संस्कृति के अनुरूप थी।
५. कालिदास की रचनाओं के अन्तर्गत पाठ्यक्रम – आधुनिक काल की भांति तत्कालीन परिस्थितियों से प्रभावित था।
६. कालिदास के साहित्य में गुरु–शिष्य सम्बन्ध, अनुशासन एवं नैतिकता चरमोत्कर्ष पर थी।
७. आधुनिक काल के लिये कालिदास की रचनाओं में निहित शैक्षिक तत्व अनुकरणीय एवं उपयोगी है।

यही वे स्थायी भाव हैं, जिनकों तथ्यान्वेषण के लिये आधार बनाया गया है। इन्हीं तथ्यों के आलोक में कालिदास के साहित्य में निहित शैक्षिक तत्त्वों को खोजने का प्रयत्न किया गया है।

शोध की सीमा –

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की सीमा 'महाकवि कालिदास' एवं उनकी कृतियों तथा उनमें निहित शैक्षिक तत्त्वों तक ही सीमित रहेगी साथ ही उनके समकालीन रचनाकारों का भी आवश्यकतानुसार उपयोग किया जा सकता है।

शोध विधि –

प्रस्तुत शोध विषय का सम्बन्ध भूत से है। इसकी विषय सामग्री अपवर्तनीय भूतकालीन परिधि में आबद्ध है। इसीलिये प्रस्तुत शोध विषय को ऐतिहासिक शोध के अन्तर्गत रखा गया है। भूतकालोन घटनाओं के अभिलेख के रूप में एवं शैक्षिक तत्त्वों को न तो प्रस्तुत कर सकते हैं और न ही उसमें परिवर्तन ही कर सकते हैं। यह बन्द प्रकार के आंकड़े होते हैं। ऐतिहासिक आंकड़ों की यह एक विशेषता है कि वे भूतकालीन प्रमाणों, वर्णनों के लिखित रूप में मिलते हैं। जिनका वर्तमान अध्ययन से प्रतयक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। वास्तव में भूतकालीन लिखित वर्णनों के आधार पर उन घटनाओं को सजीव रूप में चित्रित करने का प्रयास किया जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि ऐतिहासिक अनुसंधान ऐसी सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण है जिनका समाधान अद्यतन प्राप्त नहीं किया जा सका है। यह अनुसंधान सामाजिक क्रियाओं के लिये आधार भी प्रदान करता है। प्रस्तुत शोध इसी दिशा में किया गया एक प्रयास है। इसके अन्तर्गत ऐसी ही समस्या का चयन किया गया है, जिसकी आपूर्ति के लिये ऐतिहासिक साधनों से तथ्यों की प्राप्ति की गयी है। शोधकर्ता ने अपने अध्ययन से प्राप्त निष्कर्षों की वैधता एवं विश्वसनीयता के लिये प्राचीन वर्णित साक्ष्यों और प्रमाणों का उपयोग किया है। ये सभी साक्ष्य एवं प्रमाण प्राचीन पाण्डुलिपियों, ग्रन्थों, महाकाव्यों, अभिलेखों, ताम्रपत्रों, विदेशी यात्रियों के विवरणों आदि से संकलित किये गये हैं। अनुसंधाता ने तथ्यों एवं विवरणों की अतिशय प्रामाणिकता के लिये साक्ष्यों की ऐतिहासिकता पर अतिशय बल दिया है।

ऐतिहासिक तथ्यों की परिपुष्टि के लिये वृत्तान्त, कथा दैनन्दिनी, वंशावलियों का भी उपयोग किया गया है। उसने उपाख्यानों और भाषाओं का भी सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। शोधकर्ता ने अपने शोध से सम्बन्धित प्राप्त आंकड़ों, सूचनाओं एवं तथ्यों, कहानियों के आधार पर कालिदास के साहित्य में निहित शैक्षिक तत्त्वों का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

महत्त्व–

ऐतिहासिक अनुसंधान के द्वारा अनुसंधाता भूतकालीन घटनाओं का स्पष्ट पता लगाकर उसके गुणों एवं दोषों से पूर्णरूपेण परिचित हो जाता है। यह शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में मौजूद वर्तमान क्रियाओं और प्रवृत्तियों के आधार पर सम्यक् जानकारी प्राप्त लेता है। इससे किसी उलझी समस्या का निराकरण करने एवं हल ढूढ़ने में सहायता मिलती है। अतः इसके द्वारा वर्तमान शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं का हल ढूँढ़ने में सहायता मिलती है।

यह शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में सिद्धान्त एवं क्रियापक्ष की आलोचनात्मक व्याख्या करके वर्तमान स्वरूप की ऐतिहासिक एवं विकासात्मक स्थिति को स्पष्ट कर देता है। भूतकालिक त्रुटियों से परिचित कराकर भविष्य में त्रुटि करने से रोकता है।

निष्कर्ष–

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जहाँ शिक्षा तटविहीन जल प्रपात की भांति बिखरी हुई है। वहाँ कालिदास की मान्यताओं, आदर्शों व व्यवस्थाओं का सम्यक् उपयोग एक दिशा प्रदान कर सकता है। अनुशासन की बिगड़ी स्थिति को शान्त करने में कालिदास की शैक्षिक धारा निश्चित रूप से सफल साबित हो सकती है। आज की प्रगतिशील धारा तथा विकसित युग में कालिदास के सम्पूर्ण शक्षिक तत्त्वों को पूर्णतः ग्रहण करना तो समुचित नहीं है किन्तु अनुशासन, गुरु–शिष्य सम्बन्ध, नैतिक शिक्षा, राजनीतिक एवं सामाजिक शिक्षा को समाविष्ट किया जाना अवश्य हितकर है। कालिदास के इन उच्चादर्शों को आज की शिक्षा में समाहित करके ही हम इस ''बहुजनहिताय बहुजन सुखाय'' के सिद्धान्त को प्रतिष्ठापित कर सकते हैं और तभी ''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'' को धरा पर चरितार्थ कर भारत विशद् के भाल पर सुशोभित हो सकेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. उपाध्याय, डॉ0 बलदेव : 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', शारदा मन्दिर, वाराणसी।
2. उपाध्याय, डॉ0 बलदेव : 'नाट्यशास्त्र का इतिहास'।
3. अग्रवाल, डॉ0 वासुदेवशरण : 'कालिदास एक अध्ययन'।
4. कीथ, प्रो0 ए0वी0 : 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', मोतीलाल बनारसीदास, द्वितीय संस्करण, 1968
5. त्रिपाठी, डॉ0 बाबूराम : 'संस्कृत साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा (प्रथम संस्करण), 1973
6. मिश्र, डॉ0 राजदेव : 'संस्कृत रूपकों के नायक' : नाट्यशास्त्रीयं विमर्श, प्रथम संस्करण, सन् 1988, नयी कालोनी, बियावा रोड, फैजाबाद।